स्वानुभूति से रसानुभूति की ओर

—आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी की काव्य-क्षणिकाएं

डॉ० मोहनचन्द

स्वानुभूति जब रसानुभूति का संसर्ग पाकर समष्टि तक पहुंच जाती है तो तत्त्वचिन्तन की अभिव्यक्ति काव्यशक्ति से गुंजायमान रहती है। सच तो यह है कि विश्व प्रसिद्ध धर्म ग्रन्थों की असाधारण लोकप्रियता का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है कि धर्मप्रभावना को काव्य साधना का मणिकांचन संयोग मिला। काव्य का स्वर पाते ही अभिव्यक्ति देश-काल-पात्र की संकुचित परिधियों से ऊपर उठकर विश्वजनीनता का रूप धारण कर लेती है परिणामतः उद्घाटित सत्य किसी व्यक्तिविशेष या धर्मविशेष के ही अमानत नहीं रह जाते अपितु समग्र मानवता ही उनसे लाभान्वित होती है। आचार्यरत्न श्री देशभषण महाराज की निम्नलिखित पंक्तियों का भी यही आशय है :—

बहुत से क्या एक चिंगारी चाहिए कोयले स्वयं धधक उठेंगे।
बहुत से क्या एक मनुष्य चाहिए मनुष्यता स्वयं निखर उठेगी।।

व्यष्टि से समष्टि की ओर पदयात्रा करने से स्वानुभूति का रसानुभूति के रूप में जो रूपान्तरण होता है भारतीय काव्यशास्त्र में उसे 'साधारणीकरण' की प्रक्रिया के नाम से जाना जाता है जिसका तात्त्विक भाव है 'असाधारण का साधारण' हो जाना। ऊपर से ऐसा लगता है असाधारण का साधारण अथवा सामान्य के रूप में परिवर्तन कोई अच्छा लक्षण नहीं है क्योंकि लोकव्यवहार में सामान्य से विशेष बनने की ओर ही लोगों की रुचि देखी जाती है। परन्तु सच तो यह है कि तत्त्वचिन्तन और काव्य साधना की अपनी अलग ही आचार संहिता है। कोई भी अच्छे से अच्छा विद्वान् या विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न कवि भी इस क्षेत्र में आता है तो उसे सर्वप्रथम निजी स्वाभिमान व स्वत्व के बोध को भुला देना होता है तभी वह एक अच्छा कवि या तत्त्ववेत्ता बन सकता है। कारण स्पष्ट है व्यष्टि समष्टि की ओर जा रहा है, असाधारण साधारण बन गया है तथा स्वानुभूति रसानुभूति के रूप में अभिव्यक्त हो गई है। जैनधर्म के प्रभावक आचार्यों में से भक्तामरस्तोत्र के प्रणेता श्री मानतुङ्गाचार्य से भला कौन परिचित नहीं। किन्तु जिनेन्द्र भक्ति के भाव से संपूरित मानतुङ्गाचार्य का 'मान' गलित हुआ सा जान पड़ता है जब वे कहते हैं कि वसन्त काल में आम्रमंजरी जैसे कोकिल को कूंजने के लिए विवश कर देती है वैसे ही जिनेन्द्र भक्ति का भाव भी उन्हें 'मुखरित' होने के लिए बाध्य कर रहा है :—

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम, त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति तच्चारुचूतकलिकानिकरैकहेतुः।।

मानतुङ्गाचार्य की स्वानुभूति रसानुभूति के रूप में 'मुखरित' हुई तो देश-काल-पात्र की सीमाओं से वे ऊपर उठ गए और आदि जिन को बुद्ध, शंकर, ब्रह्मा तथा विष्णु के रूप में देखने लगे :—

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्त्वं शङ्करोऽसि भुवनत्रयशङ्करत्वात्।
धातासि धीरशिवमार्गविधेर्विधानाद् व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि।।

भारतीय काव्य साधना का इतिहास चाहे वैदिक परम्परा से सम्बद्ध हो या श्रमण परम्परा से इसी तथ्य की पुष्टि करता है कि काव्याभिव्यक्ति या तो 'आराधना' के भाव से उत्प्रेरित हुई या फिर कारुणिक 'संवेदना' ने बलात् काव्य को फूटने के लिए बाध्य किया। आदि काव्य रामायण के सम्बन्ध में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की ऐसी ही धारणा है :—

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन बन जाए सहज संभाव्य है।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्म के प्रभावक आचार्यों ने मानव प्रकृति की इस प्रवृति को भली-भांति से समझा है। परिणामस्वरूप जैनधर्म का अधिकांश साहित्य काव्यसाधना से विशेष उत्प्रेरित रहा है। जिनसेन एवं गुणभद्रकृत आदिपुराण एवं उत्तरपुराण उत्कृष्ट शैली के महाकाव्य हैं तथा अनेक परवर्ती काव्यों के उपजीव्य भी हैं। इसी परम्परा में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज की काव्य साधना की पृष्ठभूमि भी अत्यन्त वैभवशाली रही है। बाल्यकाल से ही नाट्य-अभिमंचन तथा संगीत गायन के प्रति उनका रुझान रहा था। एक दायित्वपूर्ण दिगम्बरी साधना के आचार्य पद का निर्वाह करते हुए भी उन्होंने 'भरतेशवैभव', 'अपराजितेश्वरशतक' आदि उत्कृष्ट काव्य कृतियों पर व्याख्यापरक भाष्य लिखे। उपदेश सार संग्रह के अनेक सन्दर्भ ऐसे हैं जहां पर महाराज श्री का वाग्वैभव सुन्दर 'काव्याभिव्यक्ति' के रूप में स्फुट हुआ है। स्वानुभूति से रसानुभूति की ओर जाने का अनुभव महाराज श्री ने किया है और आत्मानुभूति की प्रक्रिया को समझाते हुए कहा है—"**आत्मलोचन वह है जो परलोचन की वृत्ति को निर्मूल कर दे। आत्मनिरीक्षण वह है जो परदोष दर्शन की दृष्टि को मिटा दे। दूसरों की आलोचना वही कर सकता है जिसमें आत्म-विस्मृति का भाव प्रबल होता है।**"

मौलिक सर्जन के लिए आत्मानुभूति की अनिवार्यता को रेखाङ्कित करते हुए महाराज श्री ने कहा है—"**आज आलोचकों की भरमार है, मौलिक स्रष्टा कम और बहुत कम। कारण सैद्धान्तिकता अधिक है, अनुभूति कम। सिद्धान्तवादिता से आलोचना प्रतिफलित होती है और अनुभूति से मौलिकता। सिद्धान्त से मौलिकता नहीं आती, मौलिकता के आधार पर सिद्धान्त स्थिर होते हैं।**"

आचार्य श्री ने जैनधर्म के तत्त्वचिन्तन को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने के उद्देश्य से काव्य क्षेत्र की विभिन्न प्रतीक योजनाओं, बिम्ब-विधानों, अप्रस्तुत विधानों का आश्रय लेते हुए मौलिक काव्यसर्जन को भी आधुनिक आयाम दिए हैं। प्राचीन काल से ही नीतिकारों एवं काव्य रसिकों ने 'अन्योक्ति' विधा की काव्य रचनाओं से जीवन के यथार्थ सत्यों का उद्घाटन किया है। आचार्य श्री देशभूषण महाराज के प्रकीर्ण उपदेश सन्दर्भों में 'अन्योक्ति' का पुट अत्यन्त प्रबल है। इस विधा के अन्तर्गत लोक व्यवहार या प्रकृति आदि की विभिन्न वस्तुओं को लक्ष्य करके सार्वभौमिक सत्यों का उद्घाटन किया जाता है। ऐसी काव्याभिव्यक्तियां इतनी अभिव्यंजना-प्रधान होती हैं कि सामान्य व्यक्ति भी सहज भाव से तत्त्व को ग्रहण कर लेता है। सामान्य उपदेश की अपेक्षा ऐसी अन्योक्तिपरक अभिव्यक्तियां मनुष्य के हृदय पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ने में अधिक समर्थ होती हैं। आधुनिक हिन्दी साहित्य में 'क्षणिका' शैली द्वारा काव्य लेखन की प्रवृति अत्यन्त लोकप्रिय होती जा रही है। इसी शैली के माध्यम से आचार्य श्री की काव्यक्षणिकाओं ने भी मानव जीवन के कटु सत्यों को उद्घाटित किया है।

इन पंक्तियों के लेखक ने उपदेश सार संग्रह (प्रथम भाग) से अनेक काव्यमय क्षणिकाओं और अन्योक्तियों को विविध शीर्षकों के माध्यम से संकलित रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। प्रकीर्ण रूप से यत्र तत्र बिखरे हुए उपदेशों को भाव साम्य की दृष्टि से एक शीर्षक के अन्तर्गत लाने की चेष्टा की गई है। किंचित् संकलनात्मक एवं प्रस्तुतीकरण सम्बन्धी परिवर्तनों एवं संशोधनों के अतिरिक्त समग्र भावपरकता एवं शब्द योजना की दृष्टि से महाराज श्री की मौलिकता को बनाए रखा गया है।

'ओ बन्दी देख !' सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण क्षणिका है जिसमें मानव मन द्वारा इन्द्रियों की दासता ग्रहण करने की दुर्बलताओं का हृदयाकर्षक वर्णन मिलता है। इन्द्रियां अपने बाह्य विषयों से पराभूत हो जाने के कारण आत्मोन्मुखी वृत्ति से पराङ्मुख हो गई हैं। इसी मानवीय दुर्बलता को विदेशी शासन की गुलामी के रूपक में बांधा गया है। विदेशी सत्ता का तन और मन दोनों पर अधिकार हो गया है। इस परतन्त्रता की जंजीरों में जकड़ा हुआ मानव भोगविलास के पुष्पसौन्दर्य से मोहित है और कैद कर लिया गया है। रूप-रस-गन्ध के कटीले तारों से उसकी स्वतन्त्रता अवरुद्ध हो गई है। स्वतन्त्रता, मुक्ति, आलोक और समता से वंचित मानव मन अपने विषय भोगों की लोलुपता के कारण दासता की जंजीरों में जकड़ता ही जा रहा है।

'विषय भोगों' से लिप्त मनुष्य मुक्ति की ओर जाना भी चाहे तो भी वह वहां तक पहुंचने में कितना असमर्थ है—इस भाव की सौन्दर्याभिव्यक्ति **'विवशता'** नामक क्षणिका में की गई है। नयनाभिराम सुन्दरियों से आत्म-प्रकाश का मार्ग अवरुद्ध हो गया है। धन-वैभव की शान शौकत ने तत्त्व दृष्टि को ढक दिया है। **'संघे शक्ति कलौ युगे'** में उस भेड़चाल की प्रवृति का पर्दाफाश किया गया है जब भौतिकवादी सुखवाद के शोरगुल में अध्यात्म चेतना कुंठित हो जाती है और मनुष्य जानता हुआ भी सांसारिक सुखों में ही आत्म कल्याण मानता है। संघ चेतना का युगीन स्वर उसे इस ओर जाने के लिए विवश किए हुए है। **'कर्मण्येवाधिकारस्ते'** नामक कविता में आम्रवृक्ष के प्रतीक द्वारा फलप्राप्ति के समाज शास्त्र को समझाया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत संग्रह में अनेकानेक अन्योक्तियां प्रकृति की किसी वस्तु विशेष की विशेषता द्वारा जीवन के कटु सत्यों का आभास कराती हुई हमें तत्त्वचिन्तन की गहराइयों में ले जाती हैं। आशा है काव्य रसिक एवं श्रद्धालु लोग महाराज श्री की इन क्षणिकाओं से आनन्दित होने के साथ-साथ ज्ञानान्वित भी होंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी की काव्य-क्षणिकाएं

१. ओ बन्दी देख !

ओ बन्दी ! तू पूछता है—पराजय क्या है ?
पराजय है विदेशी सत्ता के सामने आत्मसमर्पण !
विदेशी तेरे देश के हर कोने में घुसता जा रहा है
औ सोख रहा है तेरी देह से अनवरत रक्त
यही रक्त सींच रहा है विदेशी शासन के तरु मूल को
ताकि उसमें खिल सकें तरह तरह के रंग बिरंगे फूल
देख ! यही तेरी परतन्त्रता है !

विदेशी किस्म के फल फूलों ने तुझे इतना लुभाया है
देख ! यही है तेरी परतन्त्रता का हेतु !
विदेशी सेना तुझे एक ऐसे दुर्ग में बन्दी बना चुकी है
जिसके पांचों द्वारों में लगे हैं कंटीले तारों के घने जाल
ओ बन्दी ! माना शासक उदार दिल का है
तो कुछ सुविधाएं भी मिल सकती हैं !
फिर भी देख ! बन्द ही पड़े हैं स्वतन्त्रता के द्वार !

फूलों की जिस सेज में तू सोया है
इनके केशर में उलझ गए हैं तेरे पैर !
जरा देख ! बन्द ही पड़े हैं मुक्ति के द्वार

ये हीरों का हार उपहार नहीं है
यह है तेरी आखों का मनमोहक उपहास
परन्तु देख ! बन्द ही पड़े हैं ज्योति के द्वार !

जिस प्रासाद में तू बन्दी है वह है शत्रु का विजय स्तूप !
जिसमें पराजित व्यक्ति सदैव गाता है विषमता के गीत
ओ बन्दी देख ! बन्द ही पड़े हैं समता के द्वार !

२. विवशता

ओ सर्वज्ञ ! मैं तेरा मार्ग कैसे जानूं ?
देखो न ! ये कजरारे बादल मंडरा रहे हैं !
ढांक दिया है इन्होंने मेरी आखों के प्रकाश को !

ओ सर्वदर्शिन् ! मैं तुझे अब कैसे देखूं ?
देखो न ! इन गगन चुम्बी अट्टालिकाओं को !
कैद कर ली है इन्होंने मेरी पारदर्शी दृष्टि को !
ओ निर्विघ्न ! मैं तेरे पास कैसे आऊँ ?
तेरे सिंह द्वार पर बैठे हैं भयंकर प्रहरी !
बिछा दिए हैं जिन्होंने काटों के कंटीले जाल !

ओ वीतरागी ! मैं तेरे पथ पर कैसे चलूं ?
उन्मत्त हो चुका हूं सुनहरे सपनों की मादकता से
मैं आना चाहता हूं मगर पैर लड़खड़ा रहे हैं !

३. आस्तिक-नास्तिक

नास्तिक ने आत्मा का अस्तित्व न माना तो क्या ?
उसके पास विधि का अक्षय कोष है !
आस्तिक ने आत्मा का अस्तित्व माना तो
उसे एक के बदले विशाल निषेध शास्त्र को रचना पड़ा !

४. संघे शक्ति कलौ युगे

उधर मेरे साथी भी तो खड़े हैं !
पुकार पुकार कर कह रहे हैं !
अरे ! परलोक किसने देखा है !
विजय का आनन्द किसने लूटा है !!

ये पौद्गलिक सुख हमें प्रत्यक्ष हैं !
ये भोग हमारे निःसर्ग हैं !!
इन्हें पराजय कौन कहता है ?

वर्त्तमान को छोड़ रहा है !
भविष्य के लिए दौड़ रहा है !!
अरे निपट मूर्ख है !

शब्द-रूप-रस-गन्ध-स्पर्श !
सुख दुःख के हमारे साथी हैं !
इनके दुर्भेद्य संघ को भला—
पराजित कौन कर सकता है ?

अपन भी सबके साथ ही चलेंगे !
जो सबके साथ होगा !
वही अपन का भी सही !!

५. कर्मण्येवाधिकारस्ते

"कर्म में तेरा अधिकार है, फल में नहीं"
सदियों से मनुष्य इसे गाता आया है !
परन्तु तरु उसे साक्षात् निभाता आया है !!
झुके हुए आम्र वृक्ष ने सम्बोधित किया—
"फल देने के लिए होता है अपने लिए नहीं"

कच्चे फलों को मैं बाधे रखता हूँ
क्योंकि वे खट्टे होते हैं, अबोध होते हैं !
मिठास उनमें जब आती है
तो उन्हें दे दिया करता हूँ
तरु ने फल को समझाया
"भला परिपक्व के लिए कैसा बन्धन" !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. आत्म-बलिदान

जेठ के धधकते महीने में
धूप बह रही थी विकराल बन कर !
एक पनिहारिन ने जल का भरा घड़ा
काठ की पट्टी पर टिका दिया
घड़े के नीचे था गरम लू से सन्तप्त!
पानी का प्यासा रेत का ढेर !

कभी कभी बन्धन असह्य होता है !
बलिदान का भाव मुखरित हुआ
मैंने देखा—जल बिन्दु टपका
प्यासी रेत ने उसे सोख लिया
फिर दूसरा बिन्दु टपका पर
वह भी न बच सका !

मैं नहीं जान सका—नीचे गिरते हुए
और सोखे हुए जल बिन्दुओं के मुक्ति प्रेम को !
औ रेत की समरस नृशंसता को
किन्तु मैंने देखा कि अब घड़ा खाली है !

७. स्वप्न सृष्टि

देर रात के घुप अंधेरे में कबूतर आया अपने नीड़ में
मंगल प्रभात का स्वप्न टूट गया आला खाली था
केवल अंडे थे उनका पोषण करने वाली नहीं थी

वह निराश चारों ओर घूमा पर उसे नहीं पा सका
मैंने उसकी निराश-करुण आखों में झांका
उसकी मूक वेदना को पढ़ा और आत्मा को टटोला

मुझे स्मरण हो आई वह वाणी
जहां संयोग है वहां वियोग भी होगा
जो संयोग में सुखी है वह वियोग में दुःखी होगा
संयोग-वियोग से ऊपर उठ सके ऐसी अनुभूति उसमें कहां !

वियोगी कबूतर रो रहा था
अब अपने अण्डे भी उसके लिए भार थे
मां ही ममता का प्रेम दे सकती पिता नहीं

किन्तु यह भार उस बिल्ली को नहीं लगा
जिसने कबूतर की स्वप्न सृष्टि को
एक ही झपट में उठा लिया था

८. वसुधैव कुटुम्बकम्

शत्रु वह नहीं जो हमारे ही जैसा है
मनुष्य मनुष्य जैसा है इसलिए मनुष्य मनुष्य का शत्रु नहीं !
दीप आलोक देता है भले ही वह पूरब का हो या पश्चिम का
आलोक का शत्रु आलोक नहीं हो सकता !

९. गर्वोन्माद

सस्मित कवि ने टिट्टिभ से कहा—
"हे कवे ! ऐसी कल्पना मत कर कि मैं गर्वोन्मत्त हूं ।
रात्रि में जब गहन अन्धकार छा जाता है
सारा जगत् निश्चिन्त सुख से सोता है
ऐसे में कुछ अनिष्ट भी हो सकता है
यदि ऐसे में निरालम्ब आकाश नीचे गिर पड़े
मैं सोचता हूं उसे कौन झेलेगा ?
इसलिए मैं अपने पैरों को ऊपर किए सोता हूँ
कवे ! विश्वास कर यह मेरा गर्वोन्माद नहीं !"

१०. सुरक्षा

एक तने पर अनेक शाखाएं हैं
एक शाखा पर अनेक फल !
एक फल में अनेक बीज होते हैं
बीज फिर कभी वृक्ष बनेंगे—
इस उम्मीद से फलों ने उन्हें
अपने उदर में छिपा रखा है !

११. वसन्त फिर आएगा

एक बूढा सूखे वृक्ष से बोला
ओह ! यह क्या ! फल नहीं,
फूल नहीं, एक पल्लव भी नहीं !

नंगी टहनियों से भला कैसी शोभा ?
वाह रे पतझड़ ! कैसा बुरा हाल किया !

वृक्ष बूढ़े की झुर्रियों पर मुस्कराया
और उसकी मूर्खता पर हंसकर कहने लगा—
मनुज ! बसन्त फिर आएगा ! यौवन नहीं

१२. बहुत से क्या

बहुत से क्या एक चिंगारी चाहिए
कोयले स्वयं धधक उठेंगे !

बहुत से क्या एक बीज चाहिए
वृक्ष स्वयं खिल उठेंगे !

बहुत से क्या एक हिलोर चाहिए
मन स्वयं महक उठेंगे !

बहुत से क्या एक मनुष्य चाहिए
मनुष्यता स्वयं निखर उठेगी !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. मैं कैसे मानूं ?

सेठ ने कहा मुनिराज ! मैं कैसे मानूं—
"धन अनर्थ का मूल है इसलिए बुरा है"
महाराज ! जब मैं निर्धन था तो कोई कदर न थी
मैं संयमी था किन्तु फिर भी बेईमान कहा जाता था

महाराज ! आज मैं धनी हूं लोग चरण चूमते हैं
असंयमी हूँ फिर भी लोग महान् कहते हैं
अब बताओ मैं कैसे मानूं—धन बुरा है ?

१४. मिलन और विरह

मिलन में सुख है विरह में वेदना !
मानव मिलन-प्रेमी है और विरह-विद्वेषी !
पर उसे क्या मालूम विरह के बिना मिलन का सुख कैसा ?

१५. काटना और साधना

काटना सहज है साधना कठिन
कैंची अकेली चलती है क्योंकि
उसका काम है सीधा 'काटना'
सूई धागे के बिना चल नहीं सकती
क्योंकि 'सीने' में अनेक घुमाव जो होते हैं !!

१६. नेपथ्य में

मैं ढूंढ रहा था भगवान् को
भगवान् खोज रहे थे मुझे !

अकस्मात् हम दोनों मिल गए
न तो वे झुके और न मैं झुका
न वे मुझसे बड़े थे और न मैं उनसे लघु था

एक पर्दा मुझे उनसे विभक्त किए था
वह हटा और मैं भगवान् बन गया !

१७. अस्तित्वहीन

केवल गति ही नहीं स्थिति भी चाहिए
पवन में गति है पर स्थिति नहीं
वह पल में होता है ठण्डा और पल में गरम
पल-पल में सुरभित और दुर्गन्धित भी !
लगता है उसका कोई अपना अस्तित्व ही नहीं !

१८. समन्वय

बादल चले जा रहे थे बरसने
अनन्त ने उनका सम्मान किया !
बादल चले आ रहे थे बरस कर
अनन्त ने उन्हें छाती से चिपका लिया !!

१९. सापेक्षता

वह ठंडक किस काम की
जो पानी को पत्थर बना दे ।
वह गर्मी भी क्या बुरी है
जो पत्थर को भी पानी बना दे ।।

२०. तप का चमत्कार

भला लघु बने बिना भी कोई ऊँचा उठ सकता है ?
जल बादलों से भरकर भारी हुआ कि नीचे चला गया !
पात्र में तपकर लघु हुआ कि वाष्प बन कर अनन्त में लीन हो गया
तपे बिना कौन लघु हो सकता है ?
और लघु बने बिना कौन अनन्त को छू सकता है ?

२१. गतिरोध

सिगनल झुका, रेल चलती गई ।
वह स्तब्ध रहा, रेल रुक गई ।
गतिरोध वहां होता है जहां स्तब्धता होती है ।

२२. प्रकाश और तिमिर

सूर्य ! तुम्हारे पास सब कुछ है आवरण नहीं !
तिमिर अपने अंचल में
समूचे विश्व को छिपा लेता है !
तम में साम्य है, एकत्व है
रवि, तुम यह नहीं कर पाते !
तुम्हारे रश्मिजाल में
विश्लेषण है, भेद है !
शान्ति और मौन को लेकर
आता है तिमिर
सहस्ररश्मि ! तुम लाते हो
क्रान्ति और तुमुल !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. आरोप की भाषा

कोलाहल होता है, हम जग जाते हैं
शान्ति होती है, हम सो जाते हैं
यह हमारी आरोप की भाषा है
सचाई कुछ और ही है
हम जगते हैं तभी कोलाहल होता है
हम सोते हैं तभी शान्ति रहती है
शान्ति और कोलाहल—
हमारी ही परिधियां हैं !

२४. उषा और सन्ध्या

नया आलोक लिए उषा आती है
संसार जगाने को !
सन्ध्या आती है खोलने को
हमारे जीवन की एक गांठ !
एक दिन वह भी आता है
जब जीवन की सभी गाठें
हो जाती हैं निश्शेष !

२५. विधि का विधान

कण कण तुम्हारा मधुर है—ईक्षु !
देखो ! विधि का यह कैसा विधान है !
ये सुरभिहीन तुम्हारे ही फूल
क्या तुम्हारी मधुरिमा के अनुरूप हैं ?

२६. रंग परिवर्तन

चाँदनी की सफेदी में रंगे
खजूर के तनों को विलीन होते देखा !
और यह भी देखा ! कि अपने ही रंग
के निर्विकार पत्ते
शून्य में निराधार खड़े थे !

२७. उतार चढ़ाव

मैं सागर की गहराई को
विस्मय से देख रहा था
किन्तु सागर मेरे मन की
गहराई में डूबा जा रहा था
मैं हंस रहा था उर्मियों के
उतार चढ़ाव पर
वे पहले ही मेरी कल्पनाओं के
उतार चढ़ाव पर हंस रही थीं ।

२८. मुक्ति

रस्सी ! मुझे मुक्ति दो !
अब तुम लम्बी हो चली हो !
एक साथ ही बहुतों को
बांधना चाहती हो क्या ?

वह सघनता अब मिट चुकी है !
तब विश्वास था अब सन्देह !
तब बन्धन था अब मुक्ति !
रस्सी ! तुम लम्बी हो चली हो
अब मुझे मुक्ति दो ! मुक्ति दो !!

२९. अमृत और विष

अमृत पी मनुष्य क्लान्त हो गया है
आज उसे विष की बूंदें पीनी होंगी !
अन्यथा अमृत स्वयं विष बन जाएगा !

अब विष पान कर !
चिरकाल से तू अमृत पीने का आदी है !
तेरा उद्गार भी विकृत हो चला है !
लंघन के क्रम का उल्लंघन मत कर !
अन्यथा अमृत स्वयं विष बन जाएगा !

विष को अमृत किया इसलिए
नीलकंठ शंकर बना है !
जिसने विष को पचा लिया
वह अमर हो गया !

३०. यह वही सुन्दरी है

यह वही सुन्दरी है—जिसका यौवन
वरदान बन गया था !
जिसका हर चरण हजारों आंखों
का नूपुर पहन चुका था !
जिसके सौन्दर्य की गहराई में
हजारों स्नेह बिन्दु समा चुकी थीं
यह वही सुन्दरी है—जिसके बुढ़ापे ने
हजारों दृष्टियों मे उपहास भर दिया है !
जिसके होठों की पपड़ियों में
समा चुकी है घृणा की गन्ध !
जिसके झुरियों में सिमटे हुए मुखचन्द्र ने
जगा दिए करुणा सागर में अनेक ज्वार भाटे
अरे ! यह वही सुन्दरी है !
जिसका बुढ़ापा अभिशाप हो रहा है !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१. लोकालोक

इस मिट्टी के बर्तन में
घी तूने उडेला, बाती सजाई !
पर चिन्गारी तेरे पास कहां है ?
दियासलाई मत जला, लकड़ियां मत घिस,
वह सूरज रहा बादलों की ओट में
उसकी एक किरण ले आ
याद रख ! यहां की चिन्गारी
क्षितिज के उस पार उजाला नहीं बनेगी !

३२. दिन और रात

मनुष्य ने कृत्रिम प्रकाश कर
रात को दिन बनाना चाहा
पर नींद से अधमुंदी आखों ने
यह मानने से इन्कार कर दिया
कि अभी दिन है !
दिन अपने साथ प्रकाश लाता है
इसलिए वह स्पष्ट है !
रात इसलिए अन्धेरे में रहती है
कि वह सबको एक समान बनाना चाहती है !!

३३. नीला आकाश

ओ द्रष्टा ! इस रंगीन चश्मे को उतार फेंक !
किसने कहा—आकाश नीला है ?
जो नीला है वह आकाश नहीं
धूप और छांह—नीले और सफेद की रेखा
इस सूरज ने खींच रखी है
नटराज ! ऊपर को देख आकाश नीला नहीं है,
नीचे गड्ढा है !

३४. ओ विदेह

इस रेशमी कीड़े ने अपने हाथों
यद जाल कब बुना था ?
यह अभिमन्यु इस चक्रव्यूह
मैं कब घुसा था ?
कहां है इस जाल का आदि बिन्दु
मध्य बिन्दु और अन्त बिन्दु ?
अन्दर से अभिमन्यु चिल्ला रहा है !
मैं उस मुक्ति बिन्दु में आना चाहता हूँ !
जहां जालों औ व्यूहों की परम्परा ही नहीं है।

३५ श्रद्धा का इतिहास

आसुओं की स्याही से
लिखा गया है—श्रद्धा का इतिहास !
भक्ति के उद्रेक से पिघल जाता है
भक्त का कोमल हृदय !
देख सकता नहीं भगवान्
अपने भक्त की इस दशा को
परम कारुणिक अपने भक्त के खातिर
स्वयं ही पिघल जाता है।

३६. अर्थ-गौरव

शब्द उतने ही हों जितना अर्थ !
जल उतना ही ओ जितना मीठा !
वे शब्द किस काम के
जो अर्थ-गौरव को निगल जाएं !
वह जल किस काम का
जो मिठास को ही हर ले !

३७. व्यक्ति और समूह

व्यक्ति में निर्माण शक्ति है
किन्तु मूल्य है स्वतंत्र !
व्यक्ति-व्यक्ति के बीच विराम है
शक्ति संचय से हीन
जैसे—१, २, ३ (एक, दो, तीन)
समूह में निर्माण शक्ति नहीं
स्वतंत्र मूल्य से भी वंचित !
उसमें एक दूसरे के बीच विराम नहीं !
शक्ति संचय से प्रेरित
जैसे—१ २ ३ (एक सौ तेइस)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८. आवरण

मैं आश्चर्य से देखता रहा !
सूर्य का अभिनन्दन उसने किया
जो तिमिर को अपने में छिपाए हुए था।
सत् का अभिनन्दन उसने किया
जो असत् को अपने में छिपाए हुए था।
जन्म का अभिनन्दन उसने किया
जो मृत्यु को अपने में छिपाए हुए था।
स्मित का अभिनन्दन उसने किया
जो अश्रुओं को अपने में छिपाए हुए था।
मैं आश्चर्य से देख रहा हूँ !
तिमिर प्रकाश का कवच पहने हुए है।
असत् सत् का कवच पहने हुए है।
मृत्यु जन्म का कवच पहने हुए है।
अश्रु स्मित का कवच पहने हुए है।

३९. मैं महान् हूँ !

अकिंचन हूँ, इसलिए मैं महान् हूँ !

कामना हीन हूँ, इसलिए मैं सुखी हूँ !

इन्द्रियां संयत हैं, इसलिए मैं स्वतन्त्र हूँ !

आत्मद्रष्टा हूँ, इसलिए मैं अभय हूँ !

४०. चिन्तन और चिन्ता

चिन्तन क्या है ?

जीवन दर्शन का प्रतिबिम्ब !

चिन्ता क्या है ?

विकृत मनोभावों का भय !

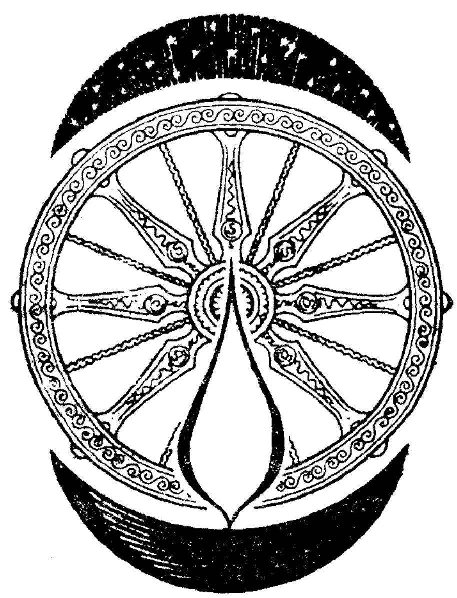

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org